

हमें कैसे पता चला
अति-सम्वाहकशीलता (सुपर-कंडक्टिविटी)
के बारे में?



लेखक: आइज़क एसिमोव
चित्रकार: एरिका कोर्स
अनुवादक: अशोक गुप्ता

हमें कैसे पता चला

अति-सम्वाहकशीलता (सुपर-कंडक्टिविटी)

के बारे में?

पुस्तक के अध्याय

१. तापमान को कैसे नापें?
२. न्यूनतम तापमान कितना है?
३. गैसों को दृश्य में बदलना
४. हीलियम गैस से संघर्ष
५. अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडक्टिविटी)

१. तापमान को कैसे नापें?

वैज्ञानिकों को सिखाया जाता है कि वो प्रश्न करें; बहुत सारे प्रश्न. उदाहरण के तौर पर, जब तापमान गिरता है तो पानी बर्फ में क्यों बदल जाता है? सूखी-बर्फ (ड्राई-आइस) का व्यवहार सामान्य बर्फ से अलग क्यों होता है? न्यूनतम तापमान कितना होगा? खोजकर्ता, प्रयोगशाला और दिन प्रतिदिन के जीवन में परीक्षण द्वारा, एक के बाद एक प्रश्नों के उत्तर ढूंढते हुए आगे बढ़ते हैं. कभी-कभी तो दुनियाँ के विभिन्न स्थानों में बसे वैज्ञानिक एक ही प्रश्न का उत्तर पाने में जुटे होते हैं. और कभी-कभी नये वैज्ञानिक उन प्रयोगों को आगे बढ़ाते हैं जिन पर पुराने वैज्ञानिक काम बंद कर चुके हैं. कभी-कभी वैज्ञानिक एक प्रश्न के उत्तर की खोज में किसी नयी समस्या का हल ढूंढ निकाल लेते हैं -- ऐसी समस्या जिसके बारे में उन्होंने कभी सोचा भी न हो. ऐसी अद्भुत खोजें विज्ञान में काम करने का विशेष इनाम है!

ऐसी ही एक अद्भुत खोज है अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडक्टिविटी). वैज्ञानिक तापमान के बारे में सब-कुछ जानने का प्रयास कर रहे थे कि एक उत्तेजित घटना घटी -- उन्हें अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडक्टिविटी) का पता लगा. यह खोज हमारी दुनिया बदल सकती है. सच तो यह है कि इसने हमारी दुनिया बदल दी है!

आइये हम उन पद-चिन्हों पर चलें जिनसे यह अद्भुत खोज संभव हुई. यह खोज घर्षण और प्रतिरोध में होने वाली क्षति के बिना ऊर्जा को तारों या पाइप द्वारा एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाना संभव कर सकती है.

हम जानते हैं की रात की अपेक्षा दिन में तापमान अधिक होता है. हम यह भी जानते हैं कि गर्मी के मौसम में तापमान सर्दी से अधिक होता है. हम यह भी जानते हैं कि कुछ पदार्थ, जैसे कि उबलता हुआ पानी या माचिस की जलती हुई तिल्ली बहुत गर्म होती है -- इतनी गर्म कि उन्हें छूने से हम झुलस सकते हैं. इसी तरह -- सूखी-बर्फ (ड्राई-आइस) का टुकड़ा बहुत ठंडा होता है -- इतना ठंडा कि उसे छूने से हमें कष्ट पहुँच सकता है.

इस कारण, हमें किसी वस्तु को छू कर यह महसूस नहीं करना चाहिये कि वह कितनी गर्म या ठंडी है. अगर वह बहुत गर्म या ठंडी हुई तो उसे छूने से हमें कष्ट हो सकता है. अगर हम यह भी मानलें कि जिस वस्तु को हम छू रहे हैं वह बहुत गर्म या ठंडी नहीं है और उसे छूने से हमें कोई कष्ट नहीं होगा, फिर भी हम छू कर यह नहीं बता सकते कि वह कितनी गर्म या ठंडी है. हमें आवश्यकता है एक ऐसे यंत्र की जो तापमान को नाप सके और सिर्फ हाथ से छूकर तापमान जानने से अधिक विश्वसनीय हो.

हमने देखा है कि जब किसी पदार्थ को गर्म या ठंडा किया जाता है तो उसमें बदलाव आता है. उदाहरण के तौर पर, अधिकतर पदार्थ गर्म करने पर, फैलते हैं; थोड़े बड़े हो जाते हैं. ठंडा करने पर, अक्सर वो सिकुड़ जाते हैं; छोटे हो जाते हैं. ऐसे परिवर्तन इतने सूक्ष्म होते हैं कि अक्सर हमें दिखाई ही नहीं देते.

आइये एक प्रयोग करें . एक खोखले बल्ब को पारे (मरकरी) से भर लें. बल्ब के ऊपर वाले हिस्से में एक लम्बी, पतली, खोखली काँच की ट्यूब लगा दें. इस ट्यूब में कुछ भी नहीं है - हवा भी नहीं . दूसरे शब्दों में इसमें शून्य (वैक्यूम) है. वैक्यूम एक लेटिन शब्द है जिसका अर्थ है "खाली".

अब पारे भरे बल्ब को, जिससे यह ट्यूब जुड़ी हुई है, गर्म करना शुरू करें. आप देखेंगे कि पारा फैलना शुरू होगा और थोड़ा पारा ट्यूब में आ जायेगा. जितना आप पारे को गर्म करते जायेंगे, उतना ही पारा और फैलेगा और पारे का स्तर ट्यूब में बढ़ता जायेगा. जब पारे को ठंडा करना शुरू करेंगे, पारा जो ट्यूब में ऊपर चढ़ गया था, धीरे धीरे नीचे आना शुरू हो जायेगा.

ट्यूब के अन्दर पारा कितना ऊपर चढ़ा या उतरा उससे आप यह अनुमान लगा सकते हैं कि पारा कितना गर्म या ठंडा है. यानी कि, पारे के चारों तरफ की हवा (या पानी अगर बल्ब पानी में रख कर गर्म किया जा रहा हो) कितनी गर्म या

ठंडी है. इस तरह का यंत्र कहलाता है थर्मामीटर (जिसका ग्रीक में अर्थ होता है "गर्मी नापने वाला"). ट्यूब के अंदर पारे की ऊँचाई हमें तापमान बताती है.



गैब्रीअल डेनियल फारेनहाइट

ऐसा पारे का थर्मामीटर १७१८ में डच वैज्ञानिक गैब्रीअल डेनियल फारेनहाइट (१६८६ - १७३६) ने बनाया. तापमान को संख्या में नापने के लिए फारेनहाइट ने कांच की ट्यूब को बराबर हिस्से में बाँटा और उस पर १, २, ३, ... नम्बर डाल दिये. हर हिस्सा एक डिग्री कहलाया. डिग्री का अर्थ लेटिन भाषा में एक "पद" होता है.

लेकिन एक समस्या अभी बाकी रह गयी. हम इन डिग्रियों को गिनना कहाँ से शुरू करें ?

एक तरीका यह हो सकता है कि हम बर्फ के टुकड़े पानी में डाल कर उसमें पारे वाला बल्ब डुबो दें और ट्यूब में पारे के स्तर पर निशान लगा दें. यह निशान पानी जमने का तापमान बतायेगा और इसको हम ज़ीरो डिग्री कह सकते हैं. फारेनहाइट को लगा कि जिस तापमान पर पानी जमकर बर्फ बनता है वह बहुत ठंडा तापमान नहीं है. उसने पानी में नमक डाल कर उसे और ठंडा किया. नमकीन पानी, साधारण पानी की अपेक्षा कम तापमान पर जमता है. वो पानी में तब तक नमक डालता रहा जब तक तापमान गिरता रहा. जब तापमान और न गिर सका, तब ट्यूब में पारे के स्तर पर उसने ज़ीरो डिग्री का निशान लगा दिया. एक निशान उसने उस तापमान पर लगाया जिस पर सादा पानी (बिना नमक वाला) जमा. और तीसरा निशान उस तापमान पर जहाँ सादा पानी उबलना शुरू हुआ.



एंडर्स सेल्सीअस

उसने पारे के निशानों को जहाँ सादा पानी जमा होता है और जहाँ उबला है को १८० बराबर के हिस्सों में बाँट दिया. और फिर ज़ीरो डिग्री निशान (जो नमकीन पानी के जमने का तापमान था) की ओर आगे बढ़ा. इस तरह, फारेनहाइट-पैमाने पर सादा पानी के जमने का तापमान ३२-वें निशान पर और उबलने का तापमान २१२-वें निशान पर हुआ. इसलिये हम कहते हैं कि पानी के जमने का तापमान "३२-डिग्री-फारेनहाइट" और उबलने का "२१२-डिग्री-फारेनहाइट" है. संक्षिप्त में इसे ३२^०F और २१२^०F (^० का अर्थ है डिग्री) लिखते हैं.

फारेनहाइट पैमाने पर हमारे शरीर का सामान्य तापमान ९८^०F है. अगर किसी व्यक्ति का तापमान बढ़ कर १००^०F या अधिक हो जाय तो हम कहते हैं कि उसे बुखार है.

तापमान नापने का फारेनहाइट-पैमाना बहुत सुविधाजनक नहीं है. पानी के जमने और उबलने का तापमान आसान अंकों में व्यक्त नहीं किया गया है. १७१२ में स्वीडन के वैज्ञानिक एंडर्स सेल्सीअस (Anders Celsius १७०१ - १७४४) ने एक विकल्प सुझाया. उसने सादा पानी के जमने का तापमान ज़ीरो-डिग्री और उबलने का तापमान १००-डिग्री निश्चित किया. अतः पानी जमने का तापमान "0 डिग्री-सेल्सीअस" या 0^०C और उबलने का तापमान "१०० डिग्री-सेल्सीअस" या १००^०C कहलाने लगा. सेल्सीअस-तापमान-पैमाना इतना प्रचलित हुआ कि सिर्फ अमेरिका को छोड़ कर सभी देशों में इसका प्रयोग होता है. अमेरिका में आम जनता अभी भी फारेनहाइट-पैमाने का प्रयोग करती है,

परन्तु वैज्ञानिकों ने सेल्सीअस-पैमाना ही अपना लिया है. इस पुस्तक में हम सेल्सीअस-पैमाने का ही प्रयोग करेंगे. फारेनहाइट-पैमाने को साथ-साथ कोष्ठक में भी लिख दिया है.

तापमान नापने के लिए पारे के थर्मामीटर का उपयोग करना तापमान नापने के तरीकों में से एक है. तापमान नापने के और भी कई तरीके हैं. विशेषकर उन स्थितियों में जहाँ तापमान इतना अधिक हो कि पारा उबलने लगे या इतना कम कि पारा जम जाय. इस किताब में उन तरीकों का वर्णन नहीं किया गया है.

अधिक से अधिक तापमान कितना हो सकता है? हमारे चारों तरफ की हवा सूर्य से गरम होती है. पृथ्वी पर अधिक से अधिक तापमान सितम्बर १३, १९२२ में लीबिया में नापा गया. छाया में यह तापमान था ५८°C ($=१३६^{\circ}\text{F}$). पृथ्वी के गर्म हिस्सों पर सूर्य १२ घण्टे चमकता है और वायु ठंडी हवा लाती है. चन्द्रमा पर सूर्य एक साथ दो सप्ताह चमकता है, वहाँ न तो कोई वायु है और न ही ठंडी हवा बहती है. इस कारण चन्द्रमा पर तापमान ११७°C ($=२४३^{\circ}\text{F}$) तक पहुँच सकता है. यह पानी के उबलने के तापमान से भी अधिक है!

एक बड़ी वस्तु के केंद्र में तापमान उसकी सतह से अधिक होता है. पृथ्वी के केन्द्र पर तापमान लगभग ६०००°C ($=१२०००^{\circ}\text{F}$) है. जुपिटर (ब्रह्मस्पति नक्षत्र) के केन्द्र का तापमान ५४०००°C ($=९७०००^{\circ}\text{F}$) तक पहुँच जाता है. और सूर्य के केन्द्र का तापमान $१५,०००,०००^{\circ}\text{C}$ ($=२७०००,०००^{\circ}\text{F}$) तक हो सकता है! जो तारे सूर्य से भी बड़े हैं, वे सूर्य से भी अधिक गर्म हैं. कुछ सितारों के केन्द्रों के तापमान करोड़ों डिग्री सेल्सिअस तक भी हो सकते हैं!

जब भूमण्डल की उत्पत्ति हुई, उस समय सब पदार्थ परमाणु से भी छोटे कणों में दब कर रह गये थे और तापमान करोड़ों, अरबों, खरबों डिग्री सेल्सिअस रहा होगा. ऐसा लगता है कि अधिक से अधिक तापमान की कोई सीमा नहीं!

चलिये अब दूसरी दिशा में चलें और देखें की चीजें कितनी ज्यादा से ज्यादा ठण्डी हो सकती हैं ?

पृथ्वी पर तापमान शून्य डिग्री सेल्सिअस से भी कम हो सकता है. अगर तापमान शून्य से १० डिग्री कम हो तो हम कहते हैं कि तापमान "बर्फ बनने से १० डिग्री सेल्सीअस या सेंटीग्रेड कम है" सुविधा के लिये हम इसे व्यक्त करते हैं " -१०°C " द्वारा. ऋण का चिन्ह बताता है की तापमान शून्य से कम है.

पृथ्वी पर सबसे ठंडी जगह है दक्षिणी ध्रुव में स्थित एन्टार्टिका महाद्वीप. सोवियत वैज्ञानिकों ने वहां समुद्र से अधिक से अधिक दूरी पर जहाँ तापमान कम से कम हो, एक केम्प स्थापित किया है. २२ जुलाई १९८३ को उन्होंने वहाँ का तापमान -८९°C ($= १२८^{\circ}\text{F}$) नापा. यह पृथ्वी पर अभी तक नापे गये तापमानों के हिसाब से सबसे ठण्डी जगह है. चंद्रमा पर, जहाँ हवा न होने के कारण, बाहर से गर्माहट नहीं आसकती, तापमान और भी कम हो सकता है. चंद्रमा पर रात दो सप्ताह लम्बी होती है और तापमान निरंतर गिरता जाता है. रात्रि की समाप्ति पर तापमान गिरते गिरते -१२७°C ($= २६१^{\circ}\text{F}$) तक पहुँच जाता है.

जो नक्षत्र सूर्य से बहुत दूर हैं वहाँ तापमान और भी कम होता है. सूर्य से सबसे दूर नक्षत्र, प्लूटो की सतह पर तापमान

-273°C (= - 326°F) तक पहुँच जाता है. तो क्या इसका मतलब यह है कि न्यूनतम तापमान की कोई सीमा नहीं? विचित्र पर सत्य तो यह है कि, हालांकि तापमान बढ़ने की कोई सीमा नहीं, परन्तु गिरने की अवश्य सीमा है. किसी वस्तु का तापमान एक सीमा से कम नहीं हो सकता.

0°C तापमान सिर्फ एक सुविधाजनक अंक है. सेल्सीअस ने आसानी के लिये पानी के जमने वाले तापमान को 0°C कहा. जब कि तापमान 0°C से भी कम हो सकता है. फारेनहाइट ने सुविधा के तौर पर नमकीन पानी के जमने वाले तापमान को 0°F कहा; हालाँकि तापमान उससे भी कम हो सकता है. हम चाहें तो ज़ीरो-डिग्री तापमान एन्टार्टिका के सबसे शीतल स्थल के तापमान पर स्थिर करें, या चाँद के, या प्लूटो के, हम जानते हैं कि हमें इन से भी कम तापमान मिल सकते हैं. अगर हम ऐसा तापमान ढूँढ़ सकें जिससे कम कोई दूसरा तापमान न हो, फिर उस तापमान को हम ज़ीरो-डिग्री कहें, तभी वह वास्तविक ज़ीरो-डिग्री होगा. ऐसे सच्चे ज़ीरो-डिग्री तापमान को, जिससे कम और कोई तापमान न हो, हम एब्सल्यूट-ज़ीरो या पूर्णय-शून्य कहेंगे.

अब प्रश्न यह है कि वैज्ञानिकों को पूर्णय-शून्य तापमान का विचार आया ही कैसे ?

२. न्यूनतम तापमान कितना है?

फ्रांस के वैज्ञानिक घीओम ऐमोन्टोन (Guillaume Amontons 1663 - 1704) पहले व्यक्ति थे जिन्होंने एब्सल्यूट-ज़ीरो या पूर्णय-शून्य की कल्पना की. ऐमोन्टोन की रुचि तापमान नापने के विभिन्न तरीकों में थी. परन्तु उसका



गैलिलियो का हवा का
थर्मामीटर

जन्म फारेनहाइट के पारे के थर्मामीटर के आविष्कार से पहले हुआ था. इसलिए उसे पारे के थर्मामीटर की कोई जानकारी न थी. उसने देखा कि जब हवा को जब गर्म किया जाय तो वह फैलती है, और जब ठंडा किया जाय तो सिकुड़ती है. इस तथ्य का उपयोग कर उसने तापमान नापने का यंत्र बनाने का सोचा. उसका हवा का थर्मामीटर बहुत सफल न रहा परंतु उसकी रुचि हवा के फैलने और सिकुड़ने के व्यवहार में बढ़ती गयी.

उसने इस बात पर गौर किया कि जब हवा को ठंडा किया जाता है तो वह एक स्थिर गति से सिकुड़ती है. और तो और, दूसरी गैसों भी उसी स्थिर गति से सिकुड़ती हैं. उसने सोचा कि ठंडा करने पर हवा तथा अन्य गैसों लगातार सिकुड़ती जायेंगी और अंत में उनका घनफल (वॉल्यूम) घट कर शून्य हो जायगा. चूँकि किसी गैस के घनफल (वॉल्यूम) को शून्य से कम नहीं कर सकते, अतः तापमान भी एक सीमा से कम नहीं किया जा सकता. उसका विचार था कि, जिस तापमान पर गैस का घनफल (वॉल्यूम)

शून्य हो जाय, वही न्यूनतम तापमान होगा.

ऐमोन्टोन ने यह खोज १६९९ में की. परन्तु इस खोज से कोई अधिक प्रभावित न हुआ और धीरे धीरे लोग इसे भूल गये. १७८९ में फ्रांस के दूसरे वैज्ञानिक जैक्यूस अलैग्जेंडर चार्ल्स (१७४६ - १८२३) ने फिर से तापमान के द्वारा गैसों के घनफल (वॉल्यूम) में होने वाले परिवर्तन का अध्ययन किया. चार्ल्स को एक फायदा था जो ऐमोन्टोन को न था. चार्ल्स के समय तक पारे के थर्मामीटर का आविष्कार हो चुका था. चार्ल्स ने देखा कि अगर वह 0°C पर हवा को ठंडा कर

-1°C ले आता है तो उसके घनफल (वॉल्यूम) में $1/270$ की कमी हो जाती है. हर एक-डिग्री तापमान कम करने से हवा का घनफल (वॉल्यूम) 0°C पर नापे गये घनफल (वॉल्यूम) से $1/270$ भाग कम होता गया. दूसरी गैसों ने भी यही व्यवहार दिखाया.

आइये इसे थोड़ा और समझें. मानलैजिये आप 0°C पर 270 क्यूबिक-इंच घनफल (वॉल्यूम) हवा का तापमान गिराना शुरू करते हैं. अगर तापमान गिरकर -1°C हो जाता है तो हवा का घनफल (वॉल्यूम) 269 क्यूबिक-इंच हो जायगा. -2°C पर 268 क्यूबिक-इंच और -3°C पर 267 क्यूबिक इंच आदि आदि. जब आप -270°C या उस के आस-पास पहुँच जायेंगे तो हवा का घनफल (वॉल्यूम) शून्य हो जायगा. और यह तापमान एब्सल्यूट-ज़ीरो या पूर्णय-शून्य कहलायेगा.



जोसेफ लुई गेल्यूसैक

चार्ल्स ने एक गलती की; उसने अपनी खोज लिखकर प्रकाशित नहीं की. दूसरे वैज्ञानिकों को उसकी खोज का पता ही नहीं लगा. शायद उसे एब्सल्यूट-ज़ीरो या पूर्णय-शून्य तापमान की कल्पना बहुत अजीब लगी होगी. फिर भी उसने अपनी खोज के बारे में निजी कोपियों में लिख लिया वरना हमें उसके विचारों का पता ही न चलता.

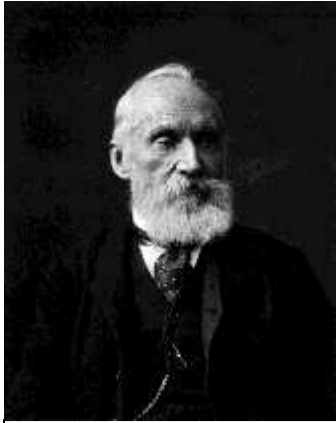
१८०२ में फ्रांस के एक और वैज्ञानिक जोसेफ लुई गेल्यूसैक (Joseph Louis Gay-Lussac १७७८ - १८५०) ने भी इसी प्रयोग को दोहराया. उसे भी वही परिणाम मिला जो

चार्ल्स को. परन्तु उसने अपने प्रयोग के परिणाम को प्रकाशित किया. अन्य वैज्ञानिक भी पढ़ कर एब्सल्यूट-ज़ीरो या पूर्णय-शून्य तापमान के बारे में उत्सुक हुए और जुट गये पता लगाने में कि वास्तव में पूर्णय-शून्य तापमान आखिर है कितना.

वैज्ञानिकों ने आखिर पता लगा ही लिया कि एब्सल्यूट-ज़ीरो या पूर्णय-शून्य तापमान -273.15°C ($= -491^{\circ}\text{F}$) है .

लेकिन तापमान गिरा कर गैस के घनफल (वॉल्यूम) को कम करके पूर्णय-शून्य तापमान की जानकारी पाने में एक समस्या है -- गैसों जब तापमान गिरता है तो गैस-अवस्था में नहीं रहतीं; कम से कम कुछ गैसों तो नहीं. उदाहरण के तौर पर, पानी 100°C से ऊपर गैस अवस्था में होता है. परन्तु उसे ठंडा करें तो वह द्रव्य बन जाता है. एल्कोहल गैस अवस्था से द्रव्य बनना शुरू करता है 78.4°C ($=163.1^{\circ}\text{F}$). ईथर 34.6°C ($=94.3^{\circ}\text{F}$) पर और ब्यूटेन -0.4°C ($=31.1^{\circ}\text{F}$) पर द्रव्य बन जाते हैं. जब गैस द्रव्य बन जाती है तो तापमान कम करने से उसका घनफल (वॉल्यूम) कम तो हो जाता है परन्तु कम गति से.

गेल्यूसैक के समय, वैज्ञानिक जितना न्यूनतम तापमान प्राप्त कर पाये उसपर हवा और अन्य गैसों गैस-अवस्था में ही रहीं. द्रव्य नहीं बनीं. फिर भी इसकी कल्पना करना असंभव नहीं कि जैसे जैसे तापमान कम किया जायेगा ये गैसों द्रव्य में बदल जायेंगी और उनका घनफल (वॉल्यूम) कम तो होगा पर कम गति से. वास्तविकता तो यह होगी कि बहुत कम तापमान पर द्रव्यों का घनफल (वॉल्यूम) घटना बंद ही हो जायगा. उस अवस्था में उनका घनफल (वॉल्यूम) कभी शून्य होगा ही नहीं. अतः एब्सल्यूट-ज़ीरो या पूर्णय-शून्य तापमान का कोई अर्थ ही नहीं.



लॉर्ड कैल्विन

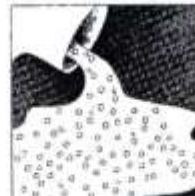
१८४८ में ब्रिटेन के वैज्ञानिक विलियम थॉमसन (William Thomson १८२४-१९०७) ने इस समस्या पर विचार किया. (बाद में, ब्रिटेन सरकार ने थॉमसन को बैरन कैल्विन का खिताब दिया. इस कारण लोग उन्हें लॉर्ड कैल्विन के नाम से जानते हैं.) कैल्विन ने तर्क दिया कि सब पदार्थ छोटे-छोटे परमाणुओं से बने होते हैं जो मिलकर मौलीक्यूल कहलाते हैं. गैसों में ये मौलीक्यूल स्वतंत्रता पूर्वक घूम सकते हैं. द्रव्यों और ठोस वस्तुओं में ये एक जगह रहते हैं और उस जगह तेजी से आगे-पीछे हिलते हैं.

चाहे मौलीक्यूल स्वतंत्रता पूर्वक घूमें या अपनी जगह हिलें, इनमें होने वाली गति इनमें स्थित ऊर्जा का प्रमाण है. तापमान जितना अधिक हो, यानी पदार्थ जितना ज्यादा गर्म हो, मौलीक्यूल उतनी ही तेजी से गतिशील होंगे अतः उनमें ऊर्जा उतनी ही ज्यादा होगी. तापमान जितना कम होगा, यानी पदार्थ जितना ज्यादा ठण्डा होगा, मौलीक्यूल उतने ही कम गतिशील होंगे अतः उनमें ऊर्जा उतनी ही कम होगी. यह तथ्य सब पदार्थों -- गैस, द्रव्य, और ठोस -- के लिए सत्य सिद्ध हुआ.

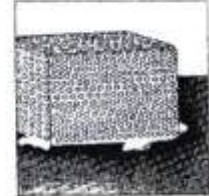
कैल्विन के सोचने के तरीके से यह पता लगा कि महत्वपूर्ण तथ्य है पदार्थ में उपस्थित मौलीक्यूलों की ऊर्जा, न कि उसका घनफल (वॉल्यूम). अतः एब्सल्यूट-ज़ीरो या पूर्णय-शून्य तापमान पर किसी भी पदार्थ में स्थित मौलीक्यूलों की ऊर्जा गिर कर शून्य हो जायगी और इससे कम नहीं हो सकती चाहे उसका घनफल (वॉल्यूम) कितना भी हो. अतः एब्सल्यूट-ज़ीरो



गैस

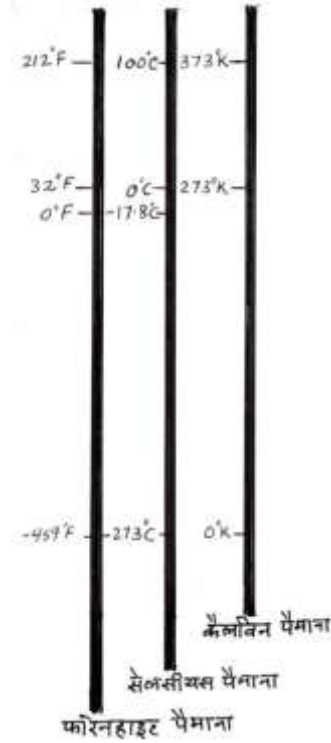


द्रव्य



ठोस

या पूर्णय-शून्य तापमान का अस्तित्व -273.15°C पर सिद्ध हुआ चाहे गैसों इस तापमान पर गैस-अवस्था में रहें या द्रव्य बन जायें.



१८५१ में कैल्विन ने इसबात पर जोर दिया कि सब तापमान एब्सल्यूट-ज़ीरो या पूर्णय-शून्य से शुरू कर नापे जायं और सेल्सीअस डिग्री पैमाने पर ऊपर बढ़ा जाय. इस तापमान-पैमाने को एब्सल्यूट-पैमाना या (लॉर्ड कैल्विन के सम्मान पर) कैल्विन-पैमाने के नाम से जाना जाता है .

कैल्विन-पैमाने पर एब्सल्यूट-ज़ीरो या पूर्णय-शून्य "ज़ीरो डिग्री कैल्विन" या 0°K है. चूँकि एब्सल्यूट-ज़ीरो या पूर्णय-शून्य पानी जमने के तापमान से 273.15 डिग्री नीचे है, इसका अर्थ हुआ पानी एब्सल्यूट-ज़ीरो या पूर्णय-शून्य से 273.15 डिग्री ऊपर जमता है, या संछिप्त में इसे लिखते हैं 273.15°K . सेल्सीअस-पैमाने पर नापे तापमान को कैल्विन-पैमाने में बदलने के लिये उसमें 273.15 जोड़ दीजिये. इस तरह पानी 100°C पर उबलता है यानी कि वह $100 + 273.15 = 373.15^{\circ}\text{K}$ पर उबलेगा.

शेष पुस्तक में हम तापमान के लिए कैल्विन-पैमाने का उपयोग करेंगे. सेल्सीअस-पैमाने को सुविधा के लिए कोष्ठक में भी लिखेंगे.

3. गैसों को द्रव्य में बदलना

जब से गेल्यूसैक ने वैज्ञानिकों का ध्यान पूर्णय-शून्य तापमान की ओर आकर्षित किया, वे सोचने लगे कि हवा एवं अन्य गैसों को पूर्णय-शून्य तापमान से ऊपर द्रव्य में बदला जा सकता है क्या? ऐसा करने के लिये उन्हें गैसों को बहुत ठंडा करना पड़ेगा -- शायद पूर्णय-शून्य तापमान के लगभग.



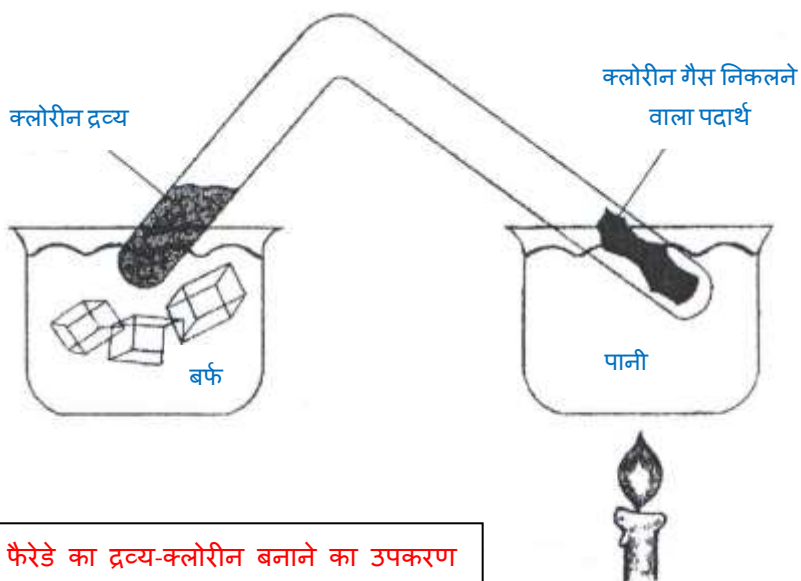
माइकल फैरेडे

लेकिन गेल्यूसैक के समय इतने कम तापमान तक ठंडा करने का कोई उपाय न था. ठंडा तापमान पाने के लिये वैज्ञानिक साइबेरिया या एन्टार्टिका जा सकते थे. परन्तु एन्टार्टिका में न्यूनतम तापमान 18°K ही मिल पाता जो कि पूर्णय-शून्य तापमान से लगभग 200 डिग्री अधिक है. इस तापमान पर गैसों को द्रव्य में बदलना असंभव था.

१८२३ में ब्रिटेन के एक वैज्ञानिक माइकल फैरेडे (Michael Faraday १७९१ - १८६७) ने

एक और तरकीब सोची. अगर किसी गैस पर दवाब डाला जाय, तो उसके मौलीक्यूल एक दूसरे के पास आजायेंगे और फिर उसे द्रव्य में बदलना आसान होगा. उसने सोचा अगर गैसों को ठंडा करने के साथसाथ उन पर दवाब भी डाला जाय तो शायद उन्हें द्रव्य में बदलना और भी आसान होगा बजाय इसके कि उन्हें केवल ठंडा ही किया जाय.

फैरेडे ने एक मोटे काँच की मजबूत ट्यूब ली. ट्यूब में उसने ऐसा पदार्थ रखा जो गर्म करने पर क्लोरीन गैस देता हो. उसने ट्यूब के दूसरे सिरे को पिघलाकर बंद कर दिया. फिर ट्यूब को बीच से गर्म किया और मोड़कर उसे बूमरैंग (अंग्रेजी अक्षर L) के आकार में बदल दिया. उसने ट्यूब के एक सिरे को जिसमें क्लोरीन गैस निकलने वाला पदार्थ था गर्म पानी में रखा और दूसरा सिरा बर्फ के पानी में. गर्म पानी वाले सिरे को उसने और गर्म करना शुरू किया तो क्लोरीन गैस तेजी से निकलनी शुरू हुई. चूंकि ट्यूब का दूसरा सिरा बंद था, गैस पर दवाब बढ़ता गया. अंत में, गैस पर दवाब और बर्फ के पानी की शीतलता के कारण ट्यूब के ठण्डे सिरे पर क्लोरीन द्रव्य इकट्ठा होना शुरू हो गया.



क्लोरीन गैस बिना किसी दवाब के 238°K (-38.5°C) पर द्रव्य बनती है. इसे साइबेरिया में जाइँ के दिनों में द्रव्य में बदला जा सकता है. परन्तु तापमान कम करने के साथ साथ अगर दवाब भी बढ़ाया जाय तो उन गैसों को भी आसानी से द्रव्य में बदला जा सकता है जो अक्सर बहुत कम तापमान पर ही द्रव्य में बदलती हैं. फैरेडे के प्रयोग से वैज्ञानिकों को कम तापमान पाने का एक नया

तरीका पता चला. कल्पना कीजिये कि एक बर्तन में गैस पर दवाब डाल कर उसे द्रव्य में बदल दिया गया और उस बर्तन को काँकें या किसी ऐसी चीज़ से लपेट दिया जिससे बाहर की गर्मी अन्दर न जा सके. अब अगर बर्तन को तनिक खोला जाय जिससे द्रव्य बाहर की गर्मी से उबलने लगे और गैस में बदलने लगे. गैस में बदलने के लिये, द्रव्य के मौलीक्यूलों को एक-दूसरे से दूर जाना होगा -- फैलना होगा. इसके लिये ऊर्जा की आवश्यकता होगी. यह ऊर्जा द्रव्य से ही मिलेगी. ज्यों-ज्यों द्रव्य गैस बनकर उड़ना शुरू होगा, उसका तापमान जल्दी से और भी कम होता जायगा.

१८३५ में फ्रांस के रसायनशास्त्री सी. एस. ए. तिहलोरेयय (C.S.A. Thilorier) ने कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस को फैरेडे की विधि से द्रव्य में बदला. उसने धातु की ट्यूब का प्रयोग किया जो काँच की ट्यूब से कहीं अधिक शक्तिशाली थी. जब ट्यूब में काफी सारा कार्बन-डाई-ऑक्साइड द्रव्य एकत्र हो गया, तो उसने ट्यूब का मुँह खोलकर थोड़ा सा उड़ जाने दिया. उसने देखा कि ट्यूब में द्रव्य का तापमान और कम होगया और वह ठोस में परिवर्तित हो गया.

ठोस कार्बन-डाई-ऑक्साइड बिलकुल बर्फ जैसा लगता है, परन्तु गर्म करने पर द्रव्य में बदलने की बजाय सीधे गैस में बदल जाता है। इस कारण इसे डाई-आइस (सूखी-बर्फ) कहते हैं जो कि 198.6°K (-72.9°C) पर सीधे गैस में बदल जाता है। डाई-आइस (सूखी-बर्फ) के टुकड़ों को द्रव्य-ईथर में डालकर उसे ठंडा किया जा सकता है। द्रव्य-ईथर को जमाने के लिये बहुत कम तापमान चाहिये। डाई-आइस (सूखी-बर्फ) के टुकड़े ईथर को ठंडा करते हैं और वह धीरे-धीरे भाप बन कर उड़ना शुरू कर देता है -- परिणाम -- ईथर का तापमान और गिर जाता है। डाई-आइस (सूखी-बर्फ) और ईथर के मिश्रण का तापमान 163°K (-110°C) तक गिर सकता है। यह एन्टार्टिका में पाये जाने वाले न्यूनतम तापमान से भी कम है।

अगर हम फ़ैरेडे के प्रयोग में ट्यूब के एक सिरे में गैस पैदा करें और दुसरे सिरे को बर्फ के पानी की बजाय डाई-आइस (सूखी-बर्फ) से ठंडा करें तो गैसों को आसानी से द्रव्य में बदला जा सकता है -- विशेष कर उन गैसों को जिन्हें पहले द्रव्य में बदलना कठिन था।

वास्तव में, 1860 के दशक के अंत तक, तब तक जानकार गैसों में, केवल 8 ऐसी गैसों थीं जिनको द्रव्य में बदला न जा सका था। वो गैसों थीं - ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, यह दो गैसों मिलकर हवा बनाती हैं; कार्बन-मोनो-ऑक्साइड, एक जहरीली गैस जो मोटर-गाड़ियों के एग्ज़ोस्ट पाइप से निकलती है; और हाइड्रोजन -- सब गैसों से हल्की गैस। 1800 शतक के अंत तक, 8 और गैसों की खोज हुई जिनको डाई-आइस (सूखी-बर्फ) और ईथर के मिश्रण द्वारा द्रव्य में न बदला जा सका। वे थीं फ्लोरीन, आर्गॉन, नीओन और हीलियम। 1869 में आयरलैंड के एक वैज्ञानिक थॉमस एंड्रूज (1813 - 1889) ने इन गैसों को द्रव्य में बदलने की कठिनाई को समझाया। उसने पता लगाया कि गैस का तापमान जितना अधिक होगा उसे द्रव्य में बदलने के लिए उतने ही अधिक दबाव की आवश्यकता होगी। गैस के तापमान को अगर थोड़ा सा बढ़ाया, तो उसे द्रव्य में बदलने के लिए बहुत ज्यादा दबाव की जरूरत पड़ी। और तो और, एक "विशेष (क्रिटिकल)-तापमान" के ऊपर गैस पर कितना भी दबाव डाला जाय, उसे द्रव्य में नहीं बदला जा सकता। जिन आठ गैसों को द्रव्य में न बदला जा सका उनका विशेष(क्रिटिकल)-तापमान 163°K (-110°C) से भी कम था। अतः द्रव्य में बदलने के लिये इन गैसों को सबसे पहले 163°K (-110°C) से भी नीचे ठंडा करना होगा -- यानिकि, डाई-आइस (सूखी-बर्फ) और ईथर के मिश्रण द्वारा प्राप्त तापमान से भी नीचे।

1842 में लॉर्ड केल्विन (जो अभी विलियम थॉमसन के नाम से ही जाने जाते थे) और उनके ब्रिटिश वैज्ञानिक मित्र जेम्स प्रेस्कॉट जूल (James Prescott Joule 1818 - 1889) ने यह प्रदर्शित किया कि द्रव्य को गैस-अवस्था में बदल कर उड़ने देने के अलावा भी एक तरीका है जिससे तापमान कम किया जा सकता है। उनका सोचना था कि मान लीजिये कि आप गैस पर दबाव डालकर उसे किसी छोटे-सकरे बर्तन में रखें और उसे जितना ठंडा कर सकते हैं करें। फिर इस दबी गैस को किसी बड़े बर्तन में फैलने दें, तो यह फैलने की क्रिया गैस से ऊर्जा लेगी जिसके कारण उसका तापमान और कम होजायगा। इसे "जूल-थॉमसन प्रभाव" कहा गया।

1876 में फ्रांस के एक भौतिकशास्त्री लुई पॉल काह्युहटे (Louis Paul Cailletet 1832-1913) ने ऑक्सीजन पर जितना दबाव दाल सकता था डाला। फिर दबी हुई ऑक्सीजन को जितना ठंडा कर सकता था किया

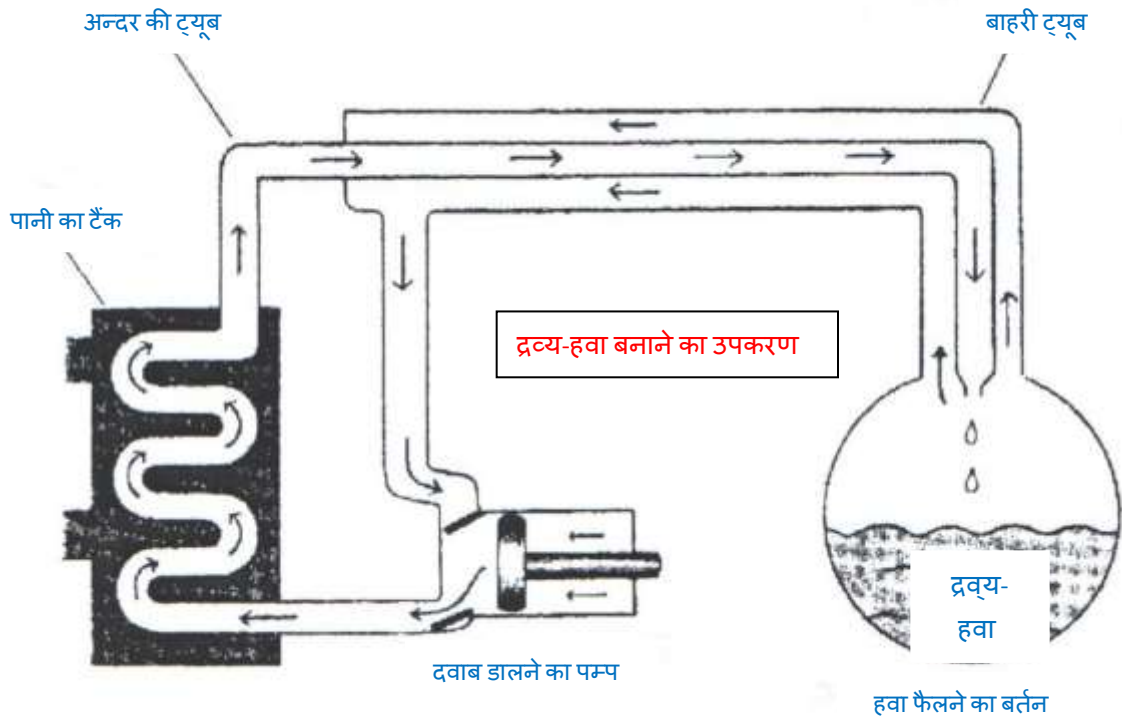
और उसे बड़े बर्तन में फैलने के लिए छोड़ दिया. उसने देखा कि ऑक्सीजन का तापमान गिर गया और द्रव्य-ऑक्सीजन की छोटी-छोटी बूँदें नजर आने लगीं. इस प्रयोग को उसने नाइट्रोजन और कार्बन-मोनो-ऑक्साइड पर दुहराया और उनके द्रव्य की भी छोटी-छोटी बूँदें प्राप्त कीं.

धीरे-धीरे इस तकनीक में सुधार हुआ और १८८३ में वैज्ञानिक इन गैसों को अधिक मात्रा में द्रव्य में बदलने में सफल होगये. वास्तव में, १२ साल बाद जर्मनी के एक रसायनशास्त्री कार्ल वान लिण्ड (Carl von Linde १८४२-१९३४) ने एक ऐसा तरीका निकाला जिससे हवा को काफी मात्रा में आसानी से द्रव्य में बदला जा सके. उसके तरीके से बनी द्रव्य-हवा इतनी सस्ती पड़ी की उसका उपयोग औद्योगिक रूप से होने लगा.

१८९५ तक आठ में से पाँच गैसों को निम्नलिखित तापमानों पर द्रव्य-अवस्था में लाना सम्भव हो पाया.

ऑक्सीजन	९० ^० K या -१८२.९८ ^० C
आर्गोन	८७.२८ ^० K या -१८५.८७ ^० C
फ्लोरीन	८५.०१ ^० K या -१८८.१४ ^० C
कार्बन-मोनो-ऑक्साइड	८१.७० ^० K या -१९१.४५ ^० C
नाइट्रोजन	७७.३५ ^० K या -१९५.८ ^० C

वैज्ञानिक अब पूर्ण-शून्य (एब्सल्यूट-ज़ीरो) तापमान के ७७^० पास तक पहुँच गये. परन्तु तीन गैसों -- नीओन, हाइड्रोजन, और हीलियम -- अभी बाकी थीं जिन्हें द्रव्य में न बदला जा सका था. ऐसा लगने लगा था कि शायद "जूल-थॉमसन प्रभाव" इन गैसों पर काम नहीं कर रहा.



इसी दौरान, १८७३ में एक डच वैज्ञानिक जोहेन्स डाइडेरिक वांडरवाल्स (Johannes Diderik van der Walls १८३७ - १९२३) ने गैसों का अध्ययन किया और उन्हें द्रव्य में बदलने की कठिनाई को समझाने का प्रयास किया। उसकी शोध से पता चला कि इन तीन गैसों पर "जूल-थौमसन प्रभाव" एक विशेष तापमानों के नीचे ही काम करता है। ज्यादातर गैसों पर "जूल-थौमसन प्रभाव" काफी अधिक तापमान पर ही काम करने लगता है और सामान्य तापमान पर ही गैसों को ठंडा किया जा सकता है।

शोध से पता चला कि हाइड्रोजन पर "जूल-थौमसन प्रभाव" १९०°K (-८३°C) से भी कम तापमान पर होगा। इसका मतलब है कि पहले हाइड्रोजन को एन्टार्टिका में पाये गये सबसे कम तापमान से भी कम तापमान तक ठंडा करना होगा और फिर उसे "जूल-थौमसन प्रभाव" के अंतर्गत फैलाकर और अधिक ठंडा करना पड़ेगा।



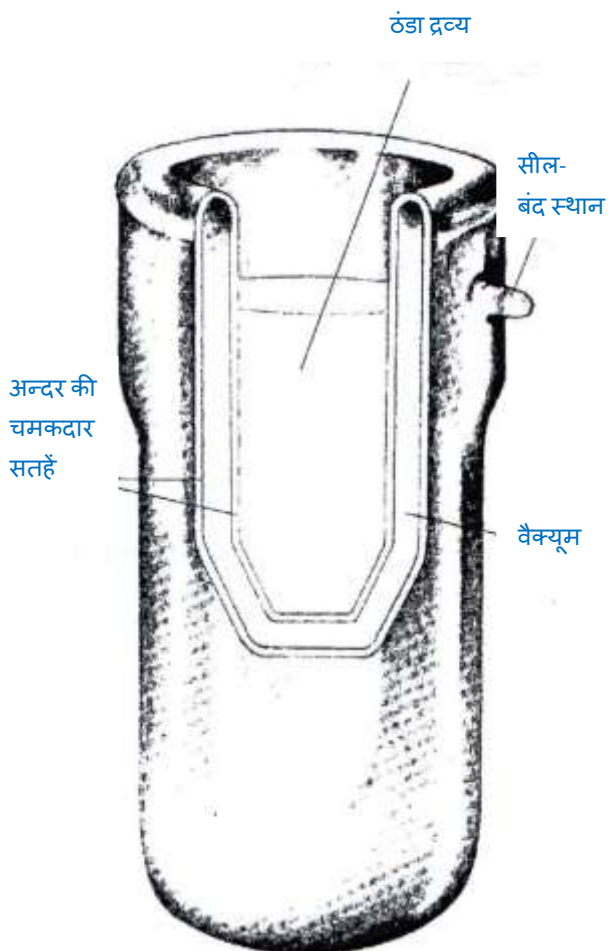
जेम्स ड्यूर

स्कॉटलैंड के रसायनशास्त्री जेम्स ड्यूर (James Dewar १८४२ - १९२३) पहले वैज्ञानिक थे जिन्होंने इस बारे में सोचना शुरू किया। उसने काफी मात्रा में द्रव्य-नाइट्रोजन ७७°K (-१९६°C) तापमान पर बनाया। यह तापमान उस तापमान से काफी कम था जिस पर हाइड्रोजन पर "जूल-थौमसन प्रभाव" काम करना शुरू करेगा। उसने हाइड्रोजन गैस एक मजबूत बर्तन में रख कर उस पर दबाव डाला और इस बर्तन को द्रव्य-नाइट्रोजन वाले बर्तन में डुबो दिया। डूबी हुई हाइड्रोजन, ठंडी हो कर द्रव्य-नाइट्रोजन के तापमान पर पहुँच गयी। फिर ड्यूर ने हाइड्रोजन को फैलने दिया। फैलने से हाइड्रोजन और ठंडी होने लगी और अंत में सन १८९५ में उसे द्रव्य-हाइड्रोजन मिली।

हाइड्रोजन गैस २०.८३°K (-२५२.७७°C) पर द्रव्य में बदली। जिस तरह हाइड्रोजन को द्रव्य में बदला गया उसी तरह नीओन को भी द्रव्य में बदला गया। वास्तव में, नीओन गैस, हाइड्रोजन गैस की तुलना में तनिक अधिक तापमान पर द्रव्य में बदली -- २७°K (-२४६.१०°C)।

ड्यूर ने द्रव्य-नाइट्रोजन को जल्दी से उड़ने से रोकने का भी एक तरीका ढूँढ़ निकाला। उसने द्रव्य-नाइट्रोजन को एक दोहरी-दीवाल के बर्तन में रखा। दीवाल के बीच में वैक्यूम (शून्य) पैदा किया। एक-दीवाल वाले बर्तन में गर्मी या सर्दी बर्तन के अंदर और बाहर आसानी से आ-जा सकती है। परन्तु दोहरी-दीवाल वाले बर्तन में जिसमें दीवाल के बीच शून्य है (हवा भी नहीं!) -- गर्मी और सर्दी शीघ्रता से अन्दर और बाहर नहीं आ-जा सकती।

ताप, छोटी-छोटी लहरों के रूप में वैक्यूम में से भी प्रसारित (रैडियेट) हो सकता है। ड्यूर ने इसे रोकने के लिये बर्तन की दीवालों के अन्दर की सतहों को चिकना और चमकदार बनाया जिससे दीवाल की सतहें दर्पण की तरह ताप को वापस (रिफ्लेक्ट) फेंक सकें और आर-पार न जाने दें। इस तरह, द्रव्य-गैस जिस बर्तन में रखी हो उसकी दीवालों से, ताप का आदान-प्रदान लगभग असंभव हो गया।



ड्यूर फ्लास्क का अनुप्रस्थ काट (cross-section)

अगर ऐसे बर्तन में किसी ठण्डे द्रव्य को रखा जाय तो ताप का आदान-प्रदान इतना कम होगा कि द्रव्य बहुत देर तक ठंडा ही बना रहेगा -- गर्म हो कर उड़ेगा नहीं. ऐसे बर्तन को "ड्यूर फ्लास्क" कहते हैं. आम भाषा में यह "थर्मस बोतल" के नाम से भी जाना जाता है. इसके मुँह पर डाट और कप लगा कर इसे ठण्डे पानी या जूस को ठंडा और कौफी या चाय को गर्म रखने के लिये घरों में प्रयोग करते हैं.

ड्यूर ने अपने एक फ्लास्क में द्रव्य-हाइड्रोजन को रखा और उसे भाप बनकर उड़ने के लिए छोड़ दिया. चूंकि ताप फ्लास्क के बाहर से अन्दर नहीं आ सकता, भाप बनकर उड़ने के लिए ताप द्रव्य-हाइड्रोजन से ही मिला. जिससे द्रव्य और ठंडा हो गया. १८९९ में इस तरीके से ड्यूर द्रव्य-हाइड्रोजन को ठोस-हाइड्रोजन में १३.९५°K (-२५९.२०°C) पर बदलने में सफल हुआ.

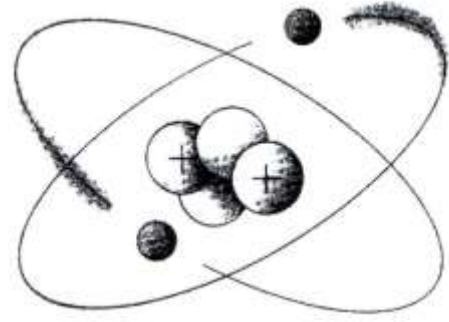
फिर भी, एब्सल्यूट-ज़ीरो या पूर्णय-शून्य से १°K के आस-पास तक हीलियम गैस को द्रव्य में न बदला जा सका.

१९०० के दशक के शुरू होने तक हीलियम गैस, गैस ही बनी रही !

४. हीलियम गैस से संघर्ष

हीलियम गैस के परमाणु सबसे अधिक स्थिर होते हैं. ये इतने अधिक स्थिर होते हैं कि थोड़े से भी परिवर्तन से वो अस्थिर हो जाते हैं. यही कारण है कि वो किसी अन्य परमाणु से नहीं जुड़ पाते -- दूसरे हीलियम परमाणु से भी नहीं. इसलिये हीलियम गैस में केवल एक अकेला परमाणु होता है. जबकि हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन और फ्लोरीन दो परमाणुओं से मिलकर बने हैं. इसलिए हम इन्हें हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन और फ्लोरीन के मौलीक्यूल कहते हैं. अतः हीलियम

को द्रव्य अवस्था में लाने के लिये इसके परमाणुओं को अत्यधिक ठंडा करना होगा जिससे वे बिल्कुल हिलना बंद कर दें.



हीलियम परमाणु

एक डच वैज्ञानिक हाइक कैमरलिंग ओहनेस (Heike Kamerlingh Onnes १८५३-१९२६. इन्हें १९१३ में भौतिक शास्त्र का नोबेल प्राइज़ मिला) ने हीलियमको द्रव्य अवस्था में बदलने की समस्या को सुलझाने की चुनौती को स्वीकार किया. उसने एक ऐसी प्रयोगशाला की स्थापना की जिसमें वैज्ञानिक अत्यधिक कम तापमान की ही समस्याओं पर शोध कर सकें. यह अपने आप में ऐसी पहली प्रयोगशाला थी.

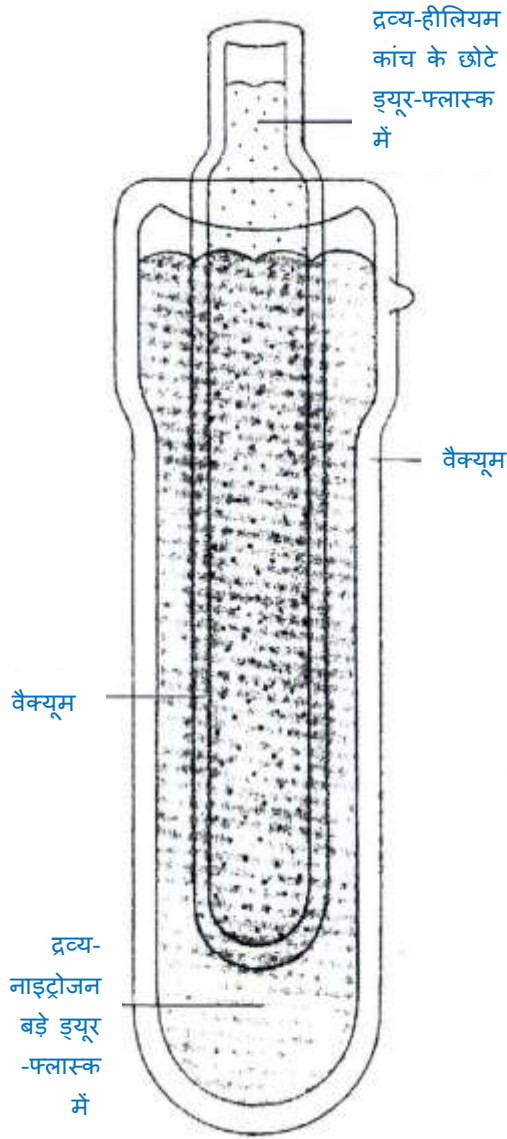


हाइक कैमरलिंग ओहनेस

कैमरलिंग ओहनेस ने हीलियम गैस पर बहुत दबाव डाला और उसे ड्यू-फ्लास्क में रखे द्रव्य-नाइट्रोजन में ठंडा होने दिया. उसने सोचा जब हीलियम द्रव्य-नाइट्रोजन जितनी ठंडी हो जायेगी तब उस पर "जूल-थॉमसन प्रभाव" का असर होगा. फिर उसने अत्यधिक ठंडी, दबी हालत में, हीलियम गैस को विस्तृत (फैलने) होने दिया जिससे वह और ठंडी हो जाय. इस तरह १९०८ में उसने हीलियम गैस को द्रव्य में परिवर्तित किया. अंत में, वैज्ञानिक आखिरी गैस को भी द्रव्य में बदलने में सफल हुए!

हीलियम ४.२१^०K (-२६८.९४^०C) पर द्रव्य में बदली. इतने कम तापमान पर डर था कि हीलियम जल्दी से फिर गैस बन कर न उड़ जाय, यह आवश्यक था कि उसे ऐसे बर्तन में रखा जाय जिससे बाहर की गर्मी कम से कम अन्दर आ सके. उसने द्रव्य-हीलियम के बर्तन को एक बड़े द्रव्य-हाइड्रोजन के बर्तन में रखा जो खुद एक और भी बड़े द्रव्य-हवा के बर्तन में रखा हुआ था.

इस तरह ओहनेस द्रव्य-हीलियम को काफी देर तक द्रव्य अवस्था में रख पाया जिससे वह उस पर अनेक प्रकार के प्रयोग कर सके. वह एक काम और करना चाहता था. वह चाहता था कि द्रव्य-हीलियम को जमा कर उसे ठोस-अवस्था में ले आये. उसने थोड़ी सी हीलियम को द्रव्य अवस्था से उड़ने दिया जिससे उसका तापमान और गिर गया. इस तरह वह ०.८३^०K (-२७२.३२^०C) तापमान पा सका. परन्तु इस तापमान पर भी हीलियम द्रव्य अवस्था में ही रहा -- ठोस न बन सका. २१ फरवरी १९२६ में ओहनेस की मृत्यु हो गयी और उसका हीलियम को ठोस में परिवर्तित करने का सपना साकार न हो सका.



दो इयूर-फ्लास्क ताप का आदान-प्रदान रोकते हैं

ऐसा लगता है कि हीलियम को सिर्फ ठंडा करके उसे जमा कर ठोस बनाना असम्भव है. एब्सल्यूट-ज़ीरो या पूर्णय-शून्य तापमान पर भी हीलियम परमाणुओं में थोड़ी-सी ऊर्जा बाकी रह जाती है. यह ऊर्जा परमाणुओं में से निकाली नहीं जा सकती. यही कारण है कि हम पूर्णय-शून्य तापमान से कम तापमान प्राप्त नहीं कर सकते. द्रव्य-हीलियम परमाणुओं में बाकी रही थोड़ी-सी ऊर्जा उन्हें ठोस-अवस्था में परिवर्तित होने से रोकने के लिए काफी है.

ओहनेस की मृत्यु के कुछ महिनो बाद, उसके एक क्षात्र, डच निवासी भौतिकशास्त्री विलैम हैंड्रिक केसम (Willem Hendrik Keesom १८७६ - १९५६) ने अधिक दबाव और कम तापमान का प्रयोग, जैसा फेरेडे ने क्लोरीन पर किया था, हीलियम को द्रव्य बनाने में किया. उसका प्रयोग सफल रहा. जब केसम ने द्रव्य-हीलियम पर २५ वायुमंडल-दबाव डाला तो वह १^०K पर ठोस-हीलियम प्राप्त कर सका. और तो और वह द्रव्य-हीलियम को ०.४^०K तक ठंडा भी कर पाया.

हालांकि वैज्ञानिक तब तक ज्ञात सभी गैसों को द्रव्य और ठोस में बदल तो चुके, परन्तु अभी वे संतुष्ट न थे. वो कुछ और करने की लालसा रखते थे -- उनकी इच्छा थी एक सीमा पार करने की -- उत्तरी या दक्षिणी ध्रुव तक पहुंचने जैसी, एवरेस्ट पर्वत पर चढ़ने जैसी, चाँद तक रौकेट भेजनी जैसी!

परन्तु न्यूनतम तापमान के विषय में सीमा पार करना संभव न था. हीलियम को द्रव्य में बदलने के दो साल पहले, सन

१९०६ में, जर्मनी के वैज्ञानिक वाल्थर हर्मन नर्नस्ट (Walther Hermann Nernst १८६४ - १९४१) ने यह साबित कर दिया कि आप एब्सल्यूट-ज़ीरो या पूर्णय-शून्य तापमान के बहुत करीब तक तो पहुँच सकते हैं, उसे प्राप्त नहीं कर सकते.

इसे इस तरह समझा जा सकता है. मानलीजिये आप ४^०K तापमान जिस पर हीलियम द्रव्य अवस्था में से शुरु करते हैं. आपको कुछ प्रयास करना होगा जिससे कि परमाणुओं की ऊर्जा आधी रह जाय और तापमान गिर कर आधा यानि कि २^०K हो जाय. फिर उतना ही प्रयास और करना होगा जिससे परमाणुओं की ऊर्जा घट कर आधी रह जाय और तापमान गिरकर १^०K हो जाय. फिर उतने ही प्रयास की और

आवश्यकता होगी तापमान को 0.9°K लाने में, 0.29°K लाने में. इत्यादि. इसका अर्थ यह है कि जैसे जैसे आप प्रयास बढ़ाते जायेंगे, तापमान गिरता तो जायगा परन्तु आप 0°K तक नहीं पहुँच पायेंगे.

फिर भी, वैज्ञानिक 0°K के जितने निकट पहुँच सकें, पहुँचना चाहते थे. अब उन्हें लगने लगा कि हीलियम को सिर्फ भाप बन कर उड़ने देने से 0.4°K तापमान से नीचे नहीं पहुँचा जा सकता.

१९२६ में डच वैज्ञानिक पीटर जौसेफ विलहेल्म डिहबाय (Peter Joseph Wilhelm Debye १८८४ - १९६६) को एक तरकीब सूझी. उसे पता था कि कुछ पदार्थों के मौलीक्यूल चुम्बक से प्रभावित होते हैं. चुम्बक का प्रयोग कर क्यों न उन मौलीक्यूलों को एक दिशा में आकर्षित किया जाय और उस चुम्बकीय पदार्थ को द्रव्य-हीलियम द्वारा ठंडा कर 0.4°K तक लाया जाय. फिर चुम्बक को हटा लिया जाय. चुम्बक के हटाने से मौलीक्यूल जो एक दिशा में थे, फिर से तितर-बितर होना शुरू कर देंगे. परन्तु तितर-बितर होने के लिए उन्हें ऊर्जा की आवश्यकता होगी जो कि वे सिर्फ द्रव्य-हीलियम, जो उनके चारों तरफ है, से ही प्राप्त कर पायेंगे. इसका मतलब हुआ कि द्रव्य-हीलियम का तापमान और कम हो जायगा.



२०-वीं सदी के शुरू में बनी एक कम-तापमान की प्रयोगशाला

१९३३ में एक अमरीकी वैज्ञानिक विलिअम फ्रांसिस जीओके (William Francis Giauque १८९५ - १९८२) ने इस तरीके का प्रयोग किया और वो द्रव्य-हीलियम को 0.29°K तापमान तक लाने में सफल हुए. पूर्ण-शून्य तापमान से सिर्फ चौथाई-डिग्री ऊपर!

जब डच वैज्ञानिकों को इसका पता चला तो उन्होंने ने भी इस प्रयोग को दुहराया और वो 0.0129°K तापमान तक पहुँच पाये -- पूर्ण-शून्य तापमान से सिर्फ १/५४ डिग्री ऊपर!

वैज्ञानिकों ने और भी तरीकों से हीलियम द्रव्य को ठंडा करने की कोशिश की और अंत में तापमान 0.00002°K तक पहुँच पाया -- पूर्ण-शून्य

तापमान से सिर्फ १/५०००० डिग्री ऊपर. पूर्ण-शून्य तापमान फिर भी न मिल सका, और ऐसा लगता है कि इसका मिलना असंभव ही है.

न्यूनतम तापमान तक पहुँचने की खोज बहुत रोमांचकारी रही. इस खोज से वैज्ञानिकों को बहुत सी नयी बातों का पता चला.

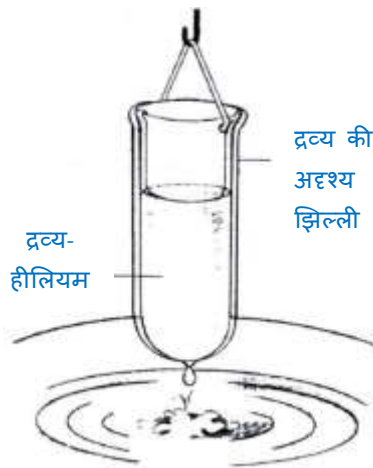
उदाहरण के तौर पर, १९२८ में कैसम की खोज से पता लगा कि २.२^०K तापमान पर हीलियम एक साधारण द्रव्य हीलियम-१ जिसके गुण और दृव्यों की तरह थे, से बदल कर हीलियम-२ हो गया जिसके गुण और दृव्यों से अलग थे. हीलियम-२ एक सुपर-द्रव्य था जो बिना किसी रुकावट के किसी भी छोटे से छोटे छेद से आसानी से निकल सकता था. जिन बर्तनों से हवा अन्दर-बाहर न जा सके वे हीलियम-२ को नहीं रोक सकते थे. हीलियम-२ बिना किसी क्षति के ताप भी पूर्ण रूप से संवाहित कर सकता था. अगर इसे गर्म किया जाय तो ताप सारे द्रव्य में एक सार संवाहित हो जाता, उबलते समय इसमें बुलबुले नहीं बनते, और इसमें कहीं अधिक या कम गर्म स्थान (हॉट स्पॉट) पैदा नहीं होते.



यह भी पता लगा कि हीलियम में दो तरह के परमाणु होते हैं -- हीलियम-४ और हीलियम-३. आम हीलियम में हीलियम-४ परमाणु ही होते हैं. दस लाख हीलियम परमाणुओं में से एक परमाणु हीलियम-३ होता है. वास्तव में हीलियम-४ ही ४.२१^०K पर द्रव्य बनता है और हीलियम-४ ही २.२^०K पर हीलियम-२ में बदलता है.

इधर-उधर ले जाने योग्य द्रव्य-हीलियम का टैंक

१९४० में वैज्ञानिक हीलियम-३ परमाणुओं को हीलियम से निकाल कर शुद्ध हीलियम-३ गैस बनाने में सफल हुये. बाद में अध्ययन से पता लगा कि हीलियम-३ परमाणुओं का भार हीलियम-४ से ३/४ गुना था. हीलियम-३ परमाणु हल्के होने के कारण हीलियम-४ की अपेक्षा जल्दी से इधर-उधर भाग सकते हैं. अतः हीलियम-३ को ठंडा करने के लिये हीलियम-४ से भी कम तापमान की आवश्यकता है.



हीलियम-२ सुपर-द्रव्य ऊपर चढ़ कर बर्तन से बाहर गिरता हुआ

१९४९ में वैज्ञानिकों ने पता लगाया कि हीलियम-३ ३.२^०K पर द्रव्य में बदलता है -- हीलियम-४ से पूरे १^०K नीचे.

वैज्ञानिकों को ऐसा लगने लगा कि हीलियम-३ को हीलियम-२ सुपर-द्रव्य में नहीं बदला जा सकता. फिर भी हीलियम-३ को बहुत ठंडा किया यह देखने के लिये कि शायद वह हीलियम-२ सुपर-द्रव्य में बदल जाय. आखिर १९७२ में, हीलियम-३ को ०.००२५^०K तापमान (पूर्ण-शून्य से १/४०० डिग्री ऊपर) हीलियम-२ सुपर-द्रव्य में बदलने में सफलता मिली.

हीलियम-४ और हीलियम-३ ही केवल ऐसे पदार्थ हैं जो इतने कम तापमान पर भी द्रव्य-अवस्था में रहते हैं. परमाणुओं की रचना और उनके

गुणों को समझने के लिये सोवियत भौतिकशास्त्री पीटर लीओनिडोविच काप्यिटसेह (Peter Leonido-vich Kapitsa १८९४ – १९८४. इन्हें १९७८ में भौतिक शास्त्र का नोबेल प्राइज़ मिला) एवं दूसरे वैज्ञानिक बहुत उत्सुकता से हीलियम जैसे अजीब पदार्थ का अध्ययन करने लगे.

५. अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडकटिविटी)

द्रव्य-हीलियम का अध्ययन करते समय एक खोज ऐसी हुई जो हमारे आम जीवन में बहुत महत्वपूर्ण और उपयोगी सिद्ध हो सकती है. यह खोज कुछ इस तरह से हुई.

उदहारण के लिये, जब तार में बिजली प्रवाहित होती है तो उसे एक रुकावट (रेजिस्टेंस) महसूस होती है. बिजली को तार के परमाणुओं को धक्का देते हुए आगे बढ़ना पड़ता है. इस प्रक्रिया में ऊर्जा का उपयोग होता है. जिससे तार गर्म हो जाता है. इस कारण सारी बिजली तार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक नहीं पहुँच पाती -- थोड़ी तार को गर्म करने में नष्ट हो जाती है.

अगर बिजली के प्रवाहन से पहले तार को ठंडा किया जाय तो तार के परमाणु मंद गति से चलेंगे और बिजली के प्रवाह में कम विघ्न डालेंगे. मतलब कि बिजली के प्रवाहन में रुकावट (रेजिस्टेंस) कम होगा. अधिकतर वैज्ञानिकों का सोचना था कि जैसे-जैसे तार का तापमान कम होता जायगा, बिजली प्रवाहन में होने वाली रुकावट भी कम होती जायगी और अंत में एब्सल्यूट-ज़ीरो या पूर्ण-शून्य तापमान पर यह रुकावट भी शून्य हो जायगी.

जैसे-जैसे बिजली के तार को द्रव्य-हाइड्रोजन के तापमान तक ठंडा किया गया, वैज्ञानिकों ने पाया कि बिजली प्रवाहन में होने वाली रुकावट भी कम होती गयी. १९११ में कैमरलिंघ ओहनेस ने जिसने हीलियम को ३-साल पहले द्रव्य में बदला था, बिजली के प्रवाहन में होने वाली रुकावट का अध्ययन द्रव्य-हीलियम के तापमान पर करने का निश्चित किया. उसे किसी आश्चर्यजनक खोज की आशा तो न थी, पर उसे मिला एक बहुत बड़ा आश्चर्य.

कैमरलिंघ ओहनेस जमे हुए पारे में बिजली के प्रवाह के रुकावट (रेजिस्टेंस) का अध्ययन कर रहा था. वैसे तो पारा बिजली के प्रवाह में अधिक रुकावट नहीं डालता, परन्तु द्रव्य-हाइड्रोजन तापमान पर यह रुकावट और भी कम होता है. 4.2°K पर जो कि हीलियम के द्रव्य बनने का तापमान है, पारे में बिजली की रुकावट उतनी ही थी जितनी वैज्ञानिक आशा कर रहे थे. परन्तु जैसे ही ओहनेस ने पारे का तापमान थोड़ा और कम किया, उसने पाया कि 4.2°K पर यह रुकावट (रेजिस्टेंस) एक दम समाप्त हो गयी. इस तापमान के नीचे पारा बिजली को बिना किसी रुकावट के पूर्ण रूप से संवाहित कर रहा था. चूँकि बिजली को किसी रुकावट का सामना न करना पड़ा उसका कोई अंश तार को गर्म करने में नष्ट न हुआ. इन

परिस्थितियों में बजली पूर्ण रूप से बिना किसी क्षति के संवाहित हो सकी -- इसलिये इस घटना को अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडकटिविटी) कहा गया.



जॉन बारडीन

वैज्ञानिकों ने कभी सोचा भी न था कि एब्सल्यूट-जीरो या पूर्ण-शून्य से ऊपर तापमान पर बिजली बिना किसी रुकावट के संवाहित हो सकती है. 1911 में एक अमरीकी वैज्ञानिक जॉन बारडीन (John Bardeen 1908 - 1991) ने इस घटना को समझने का प्रयास किया. लेकिन किसे सब्र था यह समझने का कि ऐसा संभव कैसे हुआ. वैज्ञानिक अब यह जानने के लिए उत्सुक थे कि ऐसी अद्भुत घटना सिर्फ पारे ही में संभव है या फिर और धातुएं भी हैं.

उन्हें शीघ्र ही पता लगा कि कुछ ऐसी और भी धातु हैं जो अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडकटिविटी) का गुण प्रदर्शित करती हैं. कुछ ऐसी भी धातु मिलीं जिनमें यह गुण न था -- हो सकता है शायद इन धातुओं को और कम तापमान पर परीक्षण की आवश्यकता हो.

उदाहरण के तौर पर, हैफनीअम-धातु (hafnium) अति-सम्वाहकशील (सुपर कंडकटिव) हो सकता है अगर उसे 0.39°K या उससे भी कम तापमान तक ठंडा किया जाय. बहुत कम धातुएं ऐसी थीं जो पारे के तापमान से ऊपर अति-सम्वाहकशील (सुपर कंडकटिव) पायी गईं. जैसे कि सीसा (लेड) 7.22°K पर अति-सम्वाहकशील (सुपर कंडकटिव) हो गया. द्रव्य-हीलियम में रखे सीसे के एक छल्ले में बिजली 2 1/2 वर्ष तक बिना क्षति के बहती रही!

टेक्नीशीअम (technetium), सबसे अधिक तापमान 11.2°K पर अति-सम्वाहकशील (सुपर कंडकटिव) पाई गयी. यह एक रेडियो-एक्टिव धातु है जो प्रकृति में नहीं मिलती, इसे प्रयोगशाला में ही बनाया जा सकता है.

जनरेटरों से बिजली तारों द्वारा घरों ऑफिसों, और फेक्ट्रीओं तक पहुंचाई जाती है. लगभग 1% संवाहित बिजली तारों में रेजिस्टेंस (रुकावट) के कारण ताप बनकर नष्ट हो जाती है. जिसका अर्थ है करोड़ों डॉलर का नुकसान!

कल्पना कीजिये कि बिजली अति-सम्वाहकशील (सुपर कंडकटिव) तारों द्वारा एक जगह से दूसरी जगह भेजी जाय! बिजली की क्षति शून्य हो जायगी और करोड़ों डॉलर की बचत भी. परन्तु, अगर अधिकतम ताप जिस पर धातु अति-सम्वाहकशील (सुपर कंडकटिव) है 11.2°K है तो हमें बिजली के सब तारों को द्रव्य-हीलियम में डुबाये रखना होगा. हमारे पास ऐसी कोई चीज नहीं जो तारों को इससे अधिक ठंडा रख सके. हाइड्रोजन-द्रव्य जो हीलियम से थोड़ा कम ठंडा है, 14°K पर जम जाता है, और उसे अगर भाप बनकर उड़ने न दिया जाय तो उसका तापमान 20°K हो जायगा.

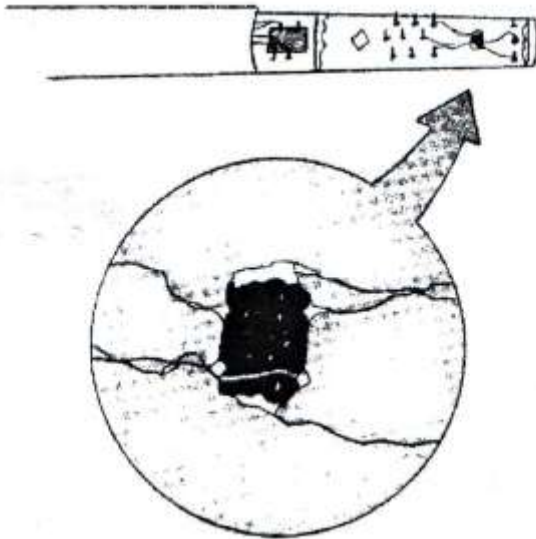
हीलियम के साथ एक परेशानी और है. एक तो यह मुश्किल से पायी जाती है और इसे द्रव्य अवस्था में रखना भी आसान नहीं है. और तो और, बिजली के सब तारों को ठंडा रखने का खर्चा बिजली बचाने के लाभ से कहीं ज्यादा होगा.

हमें आवश्यकता है एक ऐसे पदार्थ की जो ऊंचे तापमान पर अति-सम्वाहकशील (सुपर कंडकटिव) हो. चूंकि किसी शुद्ध धातु में यह गुण नहीं मिला, वैज्ञानिकों ने सोचा कि शायद कई धातुओं के मिश्रण "मिश्र-धातु" (एलॉय) में यह गुण

मिले . वैज्ञानिक जितनी भी मिश्र-धातुओं को पा सके, परीक्षण करने लगे. लगभग १४०० मिश्र-धातुओं के परीक्षण से पता लगा कि उन्हें अति-सम्वाहकशील (सुपर कंडकटिव) होने के लिये काफी कम तापमान चाहिये. इतने कम तापमान पर अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडकटिविटी) का कोई खास व्यावहारिक उपयोग न था.



सलाई पर लगा अति-सम्वाहकशील (सुपर कंडकटिव) सेरामिक



सबसे ऊपर के चित्र में: परीक्षण के लिए सेरामिक के सैम्पल को एक लम्बी सलाई के दाहिने अंत पर लगाया. सैम्पल से निकले तार सलाई के जरिये बाईं ओर निकलते हैं जहाँ प्रयोग के परिणामों को रजिस्टर में लिखा जाता है.

बीच वाले चित्र में: सैम्पल चिप के बहुत पास का रूप

गोले के अंदर: चिप में लगे तारों को बड़ाकर दिखाया गया है

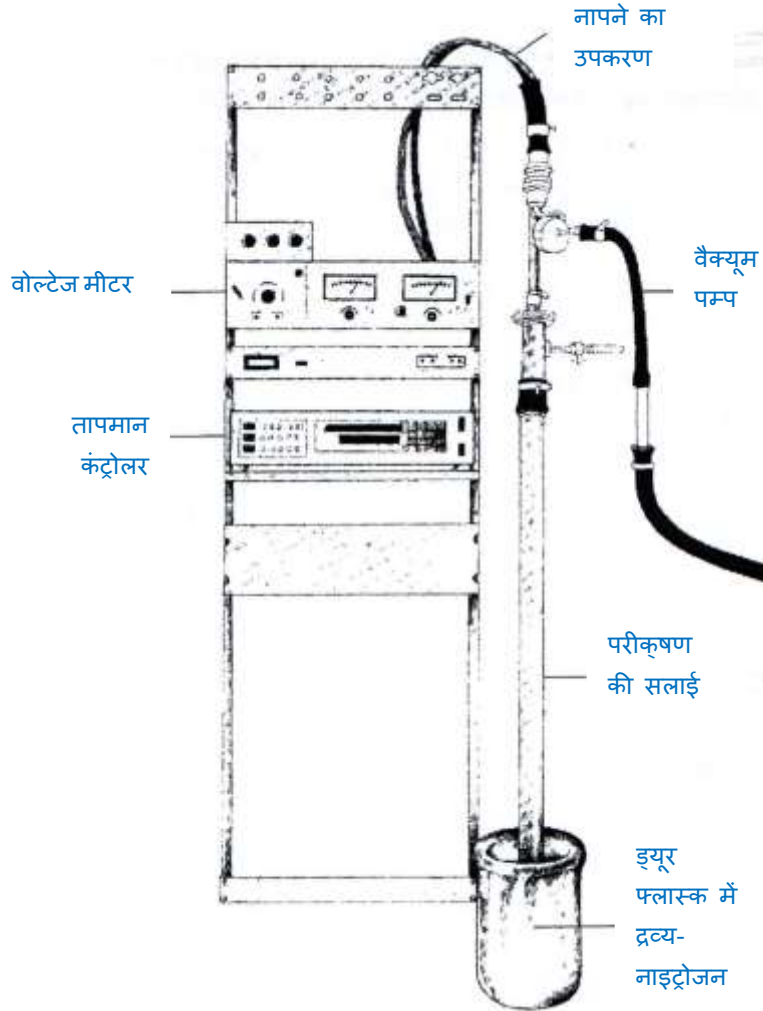
पूरी सलाई एक ठण्डे बर्तन या सुपर-थर्मस में रखी है और तारों द्वारा बिजली प्रवाहित की जा रही है. इस परीक्षण से यह नापा जा रहा है कि बिजली किस गति से भिन्न-भिन्न तापमान पर सेरामिक के सैम्पल से गुजरती है.

१९६८ में एक मिश्र-धातु का पता चला जो द्रव्य-हाइड्रोजन के तापमान पर अति-सम्वाहक सिद्ध हुआ. निबोडियम, अलूमिनम, और जर्मेनिअम से बना मिश्र-धातु २१^०K पर अति-सम्वाहकशील (सुपर कंडकटिव) पाया गया. १९८४ में निबोडियम और जर्मेनिअम से बना मिश्र-धातु २४^०K पर अति-सम्वाहकशील (सुपर कंडकटिव) पाया गया.

द्रव्य-हाइड्रोजन, द्रव्य-हीलियम की अपेक्षा आसानी से द्रव्य अवस्था में रह सकता है -- पर बहुत आसानी से नहीं. परन्तु, द्रव्य-हीलियम एक दम सुरक्षित है जबकि द्रव्य-हाइड्रोजन त्वचा को जला सकता है. द्रव्य-हाइड्रोजन भाप बनकर आसानी से विस्फोटित भी हो सकता है. इसका मतलब यह हुआ कि द्रव्य-हाइड्रोजन का उपयोग कर बिजली

को एक जगह से दूसरी जगह प्रवाहित करना मंहगे होने के साथ साथ खतरनाक भी हो सकता है. पिचहत्तर सालों में 28°K तापमान से ऊपर अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडकटिविटी) का मिलना संभव न हो सका. निराश होने जैसी स्थिति हो गयी.

और तब एक बहुत आश्चर्यजनक घटना घटी, अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडकटिविटी) की खोज से भी बड़ी.



अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडकटिविटी) नापने का उपकरण

जर्मनी में वैज्ञानिकों ने कुछ नया करने की कोशिश की. उन्होंने शुद्ध धातु या मिश्र-धातु के बजाय, धातु और ऑक्सीजन के मिश्रण यानिकि ऑक्साइडों पर परीक्षण करना शुरू किया. ऑक्साइड चिकनी मिट्टी (क्ले) जैसे पदार्थ होते हैं. जिन्हें हम सैरामिक कहते हैं (ग्रीक शब्द "क्ले" के आधार पर). जिन प्लेटों को हम खाने के लिये इस्तेमाल करते हैं वे सैरामिक की ही बनी होती हैं.

इस परीक्षण का पता १९८६ में लगा जब यह घोषणा हुई कि लैंथनम, बैरियम और कौपर ऑक्साइडों का मिश्रण 28°K पर अति-सम्वाहकशील (सुपर कंडकटिव) पाया गया.

हालांकि इस खोज का परिणाम पिछली खोजों से कोई बहुत अच्छा न था परन्तु अचानक वैज्ञानिक तरह-तरह के सैरामिक मिश्रणों का परीक्षण करने में जुट गये और धीरे-धीरे उन्नति होती नजर आने लगी. साल के अंत होने से पहले एक

सैरामिक 40°K पर अति-सम्वाहकशील (सुपर कंडकटिव) पाया गया -- अगर उसे अत्यधिक दबाव पर रखा जाय. एक दूसरी प्रयोगशाला ने तुरंत घोषणा की कि उसे एक ऐसा सैरामिक मिला जो बिना किसी दबाव के 36°K पर अति-सम्वाहकशील (सुपर कंडकटिव) है.

यह सब यहीं खत्म न हुआ. १९८७ में एक ऐसा सैरामिक बनाया गया जो 90°K पर अति-सम्वाहकशील (सुपर कंडकटिव) था. पर यह सैरामिक द्रव्य-नाइट्रोजन के तापमान पर ही अति-सम्वाहकशील (सुपर कंडकटिव) पाया

गया. द्रव्य-नाइट्रोजन, द्रव्य-हाइड्रोजन की अपेक्षा अधिक प्रचलित है. इसे द्रव्य अवस्था में रखना भी आसान है, और हीलियम जितना सुरक्षित भी.

खोज फिर भी जारी रही. मई १९८७ में एक रिपोर्ट के मुताबिक वैज्ञानिकों ने एक ऐसा सैरामिक बना लिया जो 2250°K (-82°C) पर अति-सम्वाहकशील (सुपर कंडक्टिव) था. इसका मतलब यह हुआ कि ड्राई-आइस (सूखी-बर्फ) के तापमान पर अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडक्टिविटी) सम्भव है!

परन्तु अगर अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडक्टिविटी) 2250°K पर सम्भव है तो वह सामान्य तापमान पर सम्भव क्यों नहीं? वैज्ञानिकों का यही सपना है कि वो एक दिन ऐसा पदार्थ ढूँढ सकें जिसके बने तारों को ठंडा किये बिना बिजली को बिना किसी क्षति के प्रवाहित कर सकें. और अगर ठंडा भी करना पड़े तो जैसे घरों को वतानकूलित करते हैं लगभग उस तापमान पर.

यह पक्का था कि वैज्ञानिक यह न समझा सके कि ऊंचे-तापमान पर अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडक्टिविटी) क्यों पायी गई. बारडीन द्वारा दी गयी व्याख्या इस नयी ऊंचे-तापमान पर प्राप्त अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडक्टिविटी) को समझाने के लिये संतोष जनक न थी. परन्तु व्याख्या की जल्दी क्या है -- जल्दी है इस खोज के कुछ लाभदायक उपयोगों की.

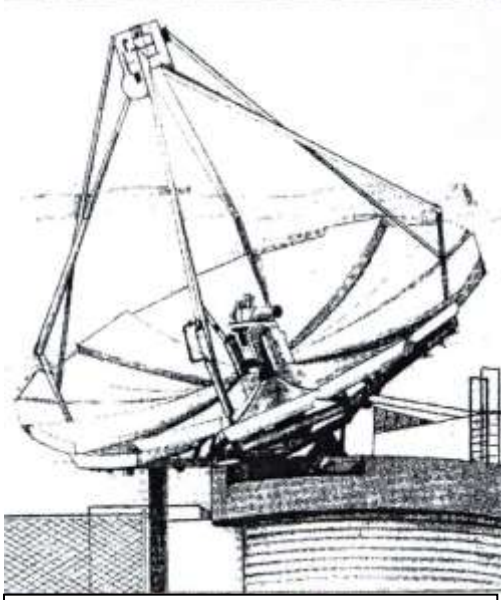
एक समस्या थी. बिजली का प्रवाहन अधिक तर तारों या झिल्ली द्वारा होता है जो सख्त तो होते हैं पर आसानी से, बिना टूटे मुड़ सकते हैं. सैरामिक जल्दी से टूट जाते हैं. उन्हें तारों या झिल्ली में बदलना आसान नहीं. फिर भी वैज्ञानिक इस समस्या को सुलझाने में लगे हुए हैं. और ऐसा लगता है कि इसका समाधान शीघ्र ही मिल जायगा.

ऊंचे-तापमान पर अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडक्टिविटी) का लाभ क्या है?

बिजली के प्रवाहन में करोड़ों डॉलर बचाने के अलावा और भी कई फायदे हैं. चूंकि बिजली की एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में क्षति होती है, जनरेटर अक्सर शहरों के पास ही लगाये जाते हैं जहाँ बिजली का इस्तेमाल होता है. ऊंचे-तापमान पर अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडक्टिविटी) के कारण इन जनरेटरों को, प्रवाहन के दौरान होने वाली बिजली की क्षति की चिंता किये, शहर से दूर लगाया जा सकता है. यह न्यूक्लीअर (परमाणु) बिजलीघरों के लिये विशेष उपयोगी है.

बहुत लोग न्यूक्लीअर (परमाणु) बिजलीघरों को दुर्घटना होने की सम्भावना के कारण शहर के पास लगाने से घबड़ाते हैं. ऊंचे-तापमान पर अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडक्टिविटी) के कारण इन बिजलीघरों को एकांत जंगल और रेगिस्तानों में बिना किसी बिजली की क्षति की चिंता किये लगाया जा सकता है.

आशा है की एक दिन हम सूर्य से भी ऊर्जा प्राप्त करने में सफल होंगे. ऐसे यंत्रों को, जो सूर्य ऊर्जा को बिजली में बदल सकें, हमें रेगिस्तानों में रखना होगा जहाँ खूब धूप रहती है. और फिर वहां से बिजली को ऊंचे-तापमान पर अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडक्टिविटी) के माध्यम से शहरों तक पहुंचाना होगा जिससे प्रवाहन में हुई बिजली की क्षति न हो.



सूर्य ऊर्जा एकत्र करने का उपकरण

बिजली को भविष्य में इस्तेमाल करने के लिए उसे एकत्र करना बहुत मुश्किल है. तारों में दौड़ती हुई बिजली रुकावट (रेजिस्टेंस) के कारण शीघ्र ही लुप्त हो जाती है. इसका मतलब यह हुआ कि जब बिजली की मांग अधिक होती है तब जनरेटरों को ज्यादा बिजली पैदा करनी पड़ती है. और जब बिजली की मांग कम होती है तब कम. निश्चित रूप से कहना कि बिजली की मांग कब कम होगी और कब ज्यादा, बहुत मुश्किल है. इस वजह से जनरेटरों पर बिजली की मांग अचानक बढ़ने और घटने से बहुत जोर पड़ता है और उनके खराब होने की संभावना भी बढ़ जाती है.

ऊंचे-तापमान पर अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडक्टिविटी) के कारण तारों में बिजली निरंतर बिना किसी क्षति के दौड़ती रह सकती है. जिन सर्किटों में बिजली की मांग कम हो उनमें वह खाली दौड़ती रहेगी और जिन सर्किटों में उसकी मांग बढ़ जाय वहां उसे भेजा जा सकता है. इससे बिजली के पैदा और वितरण करने की कार्यक्षमता (एफ़ीसिएंसी) बढ़ जायगी.

ऊंचे-तापमान पर अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडक्टिविटी) से कम्प्यूटरों को भी लाभ होगा. कम्प्यूटर धीरे-धीरे छोटे होते जा रहे हैं क्योंकि उनमें छोटी-छोटी चिप्सों पर ढेर सारे तार और बिजली के सर्किट बनाये जा सकते हैं. जैसे-जैसे चिप्स छोटे होते जायेंगे यह सर्किट कम जगह में बनाने पड़ेंगे. सकरी जगह में बने सर्किटों में बिजली बहुत गर्मी पैदा कर देगी. इस गर्मी से चिप्स पिघल भी सकते हैं. ऊंचे-तापमान पर अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडक्टिविटी) से बिजली गर्मी पैदा न कर सकेगी, जिससे चिप्स और छोटे हो सकते हैं, कम्प्यूटर और छोटे, तेज, और सस्ते बनाये जा सकते हैं जो पहले के मुकाबिल ज्यादा शक्तिशाली और उपयोगी हो सकते हैं.

लोगों ने बहुत पहले से इस सम्भावना की कल्पना की थी कि ट्रेनों और अन्य वाहनों को ऐसी पटरियों पर रखा जाय जिनमें बिजली की शक्तिशाली करंट प्रवाहित हो रही हो. यह करंट एक शक्तिशाली चुम्बकीय-क्षेत्र पैदा करेगी जो वाहन को पटरियों से तनिक सा ऊपर उठा देगा -- एक इंच के मामूली से हिस्से जितना. वाहन फिर पटरियों को छुए बिना चलेगा! वाहन की गति को कम करने वाला घर्षण लगभग समाप्त हो जायगा. ऐसे वाहन ३०० मील प्रति घंटे से भी अधिक गति से बिना किसी झटके लगे दौड़ सकते हैं. इन वाहनों में बैठने वालों को यह महसूस भी न होगा की वो यात्रा भी कर रहे हैं. यह सब ऊंचे-तापमान पर अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडक्टिविटी) ही से संभव है.



अति-सम्वाहकशील चुम्बकों द्वारा हवा में उठी हुई ट्रेन

इसके बिना रेजिस्टेंस के कारण बिजली की करंट की इतनी अधिक क्षति होगी कि इस तरह के चुम्बकीय वाहनों का उपयोग बहुत महंगा पड़ेगा.

और अंत में, वैज्ञानिक न्यूक्लीअर ऊर्जा को प्राप्त करने के नये तरीके ढूँढ़ रहे हैं. वो कोशिश कर रहे हैं कि न्यूक्लीअर फिसन (बड़े परमाणुओं को दो हिस्सों में तोड़ना) की बजाय जिससे हम आज न्यूक्लीअर ऊर्जा प्राप्त करते हैं; क्या हम न्यूक्लीअर फ्यूजन (छोटे परमाणुओं को जोड़ना) का इस्तेमाल कर सकते हैं? न्यूक्लीअर फ्यूजन से हमें ऊर्जा भी अधिक मिलेगी और दुर्घटना की सम्भावना भी कम होगी.

समस्या यह है कि परमाणुओं को जबरदस्ती एक जगह निश्चल रखने के लिये अतिशक्तिशाली चुम्बकों की आवश्यकता है. अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडकटिविटी) से ऐसे चुम्बकीय-क्षेत्रों को कम खर्च पर शक्तिशाली बनाया जा सकता है. पिछले ३०-सालों में वैज्ञानिक न्यूक्लीअर फ्यूजन को वास्तविक रूप देने में सफल न हो सके. शायद अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडकटिविटी) से यह संभव हो सके. मानवजाति को सूर्य की ऊर्जा की तरह कभी समाप्त न होने वाला ऊर्जा का एक नया स्रोत मिल जायगा.



इसमें आश्चर्य नहीं कि जिन वैज्ञानिकों ने सबसे पहले अति-सम्वाहकशीलता (सुपर कंडकटिविटी) की खोज की उन्हें १९८७ में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया. उन वैज्ञानिकों के नाम थे स्विटज़रलैंड के के. एलेक्स म्यूलर (K. Alex Muller जन्म: १९२७) और उनके छात्र जर्मनी के जे. गीओर्ग बेडनोर्ज़ (J. Georg Bednorz जन्म: १९५०).

के. एलेक्स म्यूलर और जे. गीओर्ग बेडनोर्ज़

और इस सबकी शुरुआत हुई वैज्ञानिकों की एब्सल्यूट-ज़ीरो या पूर्णय-शून्य तापमान के बारे में जानने की उत्सुकता से, इसके कितने निकट तक पहुंचने की अभिलाषा से, और यह जानने की इच्छा से कि विभिन्न पदार्थों का व्यवहार इतने कम तापमान पर कैसा होगा!

===== समाप्त =====